एक मांग नर्मदा के विरुद्ध

जनसत्ता, नई दिल्ली २४-८-०१

आशीष कोठारी

गुजरात और मध्यप्रदेश के कुछ प्रमुख राजनीतिकों ने मांग की हैं कि नर्मदा बचाओ आंदोलन को प्रतिबंधित कर दिया जाए। यह मांग स्वतंत्रता और लोकतंत्र पर दुखद प्रभाव डालने वाली नहीं, तो भी हास्यास्पद तो है ही। लोक व्यवस्था और नैतिकता के इन निराले ठेकेदारों में अब प्रतिबंध लगाने की मांग करने की एक नई प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे मांग करते हैं कि इस फिल्म या उस नाटक पर प्रतिबंध लगाओ, संगठनों पर प्रतिबंध लगाओ, इस या उस संघ पर प्रतिबंध लगाओ। अब इस जत्थे ने उस आंदोलन को अपना निशाना बनाया है जो स्वतंत्र भारत का सर्वाधिक स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाला जन आंदोलन है। वह एक ऐसा आंदोलन है जिसने न केवल नर्मदा घाटी में जनाधार बनाया है, बल्कि सारी दुनिया के मर्म को छुआ है। मजे की बात है कि यह मांग एक ऐसे समूह एनसीसीएल यानी नागरिक स्वतंत्रता की राष्ट्रीय परिषद की ओर से की गई है जो खुद मानव अधिकार समूह होने का दावा करता है।

अमदाबाद की इस संस्था द्वारा गृहमंत्री लालकृष्ण आडवाणी को जो ज्ञापन दिया गया है उस पर हस्ताक्षर करने वालों में गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री अमरसिंह चौधरी, शंकरसिंह बाघेला, दिलीप पारीख, छबीलदास मेहता, सुरेश मेहता, मध्यप्रदेश की उपमुख्यमंत्री जमुनादेवी और राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष राधाकिशन मालवीय शामिल हैं। ज्ञापन में गैर कानूनी गतिविधि कानून १९५७ के तहत नर्मदा आंदोलन को प्रतिबंधित करने की मांग के साथ-साथ आंदोलन की तथाकथित विध्वंसकारी गतिविधियां, विदेशी धन प्राप्त करना, विदेशी एजेंसियों को देश की महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं की रिपोर्ट भेजना, नर्मदा घाटी में मानव अधिकार हनन और परियोजना से प्रभावित लोगों और सर्वेक्षण और पुनर्वास के काम में लगे सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध हिंसा आदि बातें उजागर की गई हैं।

नर्मदा बचाओ आंदोलन उन लाखों लोगों के लिए संघर्ष कर रहा है जो अकारण ही विस्थापित कर दिए जाएंगे और,जिन्हें अपनी भूमि और संसाधनों से बेदखल कर दिया जाएगा। यह सब उस परियोजना के लिए किया जाएगा जिसकी उपयुक्तता और वांछनीयता पर एक गंभीर प्रश्न लगा हुआ है। सरदार सरोवर परियोजना पर किसी तरह की राय रखने के बावजूद जो भी व्यक्ति मानव अधिकारों के सिद्धांतों से सहमत होगा वह मानेगा कि बेदखली को अन्यायपूर्ण मानने और उसका विरोध करने का उन्हें अधिकार है। ऐसी मांग को प्रतिबंधित करने पर जोर देना- और वह भी तथाकथित नागरिक स्वतंत्रता संगठन के द्वारा - एक खतरनाक बात है। इस मांग में यह सोच निहित है कि सरकार के निर्णयों के विरुद्ध असहमति व्यक्त करना स्वभावत: राष्ट्र विरोधी है। परियोजना के प्रस्तावक कई दशकों से प्रचार कर रहे हैं कि सरदार सरोवर कच्छ और सौराष्ट्र के लाखों प्यासे लोगों को पानी उपलब्ध कराने के लिए बन रहा है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। वह अकालग्रस्त गुजरात को जीवन धारा उपलब्ध कराने के लिए भी नहीं है। वह तो सबसे अधिक उन बड़े किसानों, उद्योगों और मध्य गुजरात के बड़े नगरों के लिए है जिनकी बिजली और पानी की प्यास का कोई अंत नहीं है। यह उन ठेकेदारों, राजनीतिकों और विशेषज्ञों के लालच को पूरा करने के लिए अधिक है जो ज्यादा बोली लगाने वाले को अपनी आत्मा भी बेच सकते हैं। यह विकास के एक असफल मॉडल को फिर से दोहराने के लिए अधिक है।

परियोजना के निष्पक्ष और सच्चे मूल्यांकनों और अन्य उपलब्ध आंकड़ों ने बार-बार दिखा दिया है कि पानी अकालग्रस्त कच्छ और सौराष्ट्र के इलाकों तक मुश्किल से ही पहुंच पाएगा। वह वहां तक पहुंचे, इसके पहले ही मध्य गुजरात के समृद्ध लोग उसे और समृद्ध बनने के लालच में गटक लेंगे। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि गुजरात के अकालग्रस्त लोगों के ये स्वघोषित मुक्तिदाता बहुत ठोस, जमीनी और विशेषज्ञों और कार्यकर्ताओं द्वारा सुझाए गए अधिक सस्ते विकल्पों के बारे में सुनने को ही तैयार नहीं हैं। कच्छ और सौराष्ट्र में जल के अभाव और अकाल को दूर करने का उपाय है विकेंद्रित जल संग्रहण। जहां ऐसी परियोजनाएं स्वयं ग्रामीणों द्वारा बनाई गई हैं वे अनेक गांवों में अकाल मुक्ति की सफल रणनीति सिद्ध हुई हैं। लेकिन सरदार सरोवर परियोजना के प्रस्तावकों की इसमें रुचि नहीं है। हो सकता उनमें से कुछ का उस ५० वर्ष पुराने भ्रम पर अब तक विश्वास हो कि इस प्यासे क्षेत्र को नर्मदा बांध ही राहत दिला सकता है। यह भी हो सकता है कि कुछ लोग मानते हों कि बड़ी परियोजनाओं से ही संपत्ति और सत्ता की राजनीति की जा सकती है जो कि सीधे-साधे विकेंद्रित तरीकों से नहीं मिल सकतीं।

प्रतिबंध की मांग लोकतंत्र और स्वतंत्रता पर पड़ने वाले उसके प्रभावों के कारण भी खतरनाक है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और वैधानिक दृष्टि से असहमति के अधिकार हमारे कठिन संघर्ष से प्राप्त किए गए लोकतंत्र में समाहित ऐसे अधिकार हैं जिन पर भारत को गर्व है। नर्मदा बचाओ आंदोलन की विशिष्टता है कि वह पिछले १६ वर्षों से एक अहिंसक आंदोलन बना हुआ है। हिंसक घटनाएं भी घटी हैं, लेकिन वे बहुत उत्तेजित किए जाने पर ही हुई हैं। फिर भी इस आंदोलन के नेताओं ने अपने को ऐसी घटनाओं से अलग रखने का प्रयास किया है। उन्होंने आंदोलन में भाग लेने वाले सभी लोगों से अहिंसक साधनों का प्रयोग करने की बात कही है। यदि नर्मदा बचाओ आंदोलन का उद्देश्य हिंसक और राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाना होता तो हम किसी जमाने में जो खून-खराबा पंजाब में हुआ और जो आज कश्मीर और कुछ उत्तरी राज्यों में हो रहा है, वैसा यहां भी देखते। नर्मदा घाटी में भी खून-खराबा जरूर हुआ है, लेकिन वह सरदार सरोवर परियोजना का शिकार होने वाले लोगों के साथ हुआ है। पुलिस द्वारा उन्हें पीटा गया है, उन पर गोलियां चलाई गई हैं और गिरफ्तार किया गया है। जब सरदार सरोवर परियोजना के कारण अपनी भूमि से बेदखल किए गए लोगों को वहां से हटाने के लिए तलोदा (महाराष्ट्र) की एक महिला को राज्य सरकार द्वारा गोली चलाकर मार डाला गया तब नागरिक स्वतंत्रता की राष्ट्रीय परिषद का यह तथाकथित मानव अधिकार समूह कहां था? या फिर जब महाराष्ट्र के ही सुरुंग गांव का १५ वर्षीय रहमल पून्या वसावे पुलिस द्वारा अक्राणी इलाके में बेदखली के विरुद्ध शांतिपूर्ण विरोध करते हुए मारा गया या जब आदिवासी लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया, शांतिपूर्ण आंदोलनकारियों पर गोली चलाई गई तब उनके कान पर जूं तक क्यों नहीं रेंगी?

नागरिक स्वतंत्रता की राष्ट्रीय परिषद का यह आरोप भी कि नर्मदा बचाओ आंदोलन ने विदेशी एजेंसियों को गोपनीय रिपोर्ट भेजी है, बिल्कुल हास्यास्पद है। यह आरोप इन समूहों के वास्तविक स्वभाव को उजागर करता है। यदि कोई नागरिक स्वतंत्रता समूह अपने नाम के अनुरूप है तो वह कहेगा कि विकास संबंधी दस्तावेज गोपनीय नहीं होते क्योंकि वस्तुत: जनता को ऐसे सारे दस्तावेजों को देखने का अधिकार है। नर्मदा बचाओ आंदोलन और दर्जनों अन्य आंदोलनों ने हमेशा सूचना के ऐसे अधिकारों की मांग की है। सरदार सरोवर परियोजना में ऐसी क्या गोपनीयता है? राष्ट्रीय सुरक्षा को हानि पहुंचाने वाले कौन से दस्तावेज भेजे गए हैं और किनको भेजे गए हैं? यदि किसी ने उक्त दस्तावेज भेजने का अपराध किया भी है तो वे सरदार सरोवर परियोजना के सरकारी अधिकारीगण हैं जिसके लिए राज्य और केंद्र की सरकारें उत्तरदायी हैं। ये सब राज्य की आंतरिक जानकारी विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष, बाहरी दानदाता एजेंसियों और बहुराष्ट्रीय निगमों को देने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। वे उन्हें ये जानकारियां इस आशा से देते हैं ताकि परियोजना को आर्थिक सहायता मिले। यह सरकार ही है जो भिक्षा-पात्र लेकर विदेशी एजेंसियों से भीख मांगने जाती है और विदेशी पूंजी के हितों के अनुरूप नागरिक अधिकारों और पर्यावरण के कानूनों को तोड़ने-मरोड़ने के लिए उतारू रहती है। लेकिन यह भी राज्य ही है जो लगातार सूचना का अधिकार देने से इनकार करता रहता है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन ने हमेशा अपने हिसाब-किताब को खुला रखा है। लेकिन उसने यह मांग भी की है कि सरदार सरोवर परियोजना के अधिकारीगण और गुजरात सरकार भी ऐसा ही करें। बराबरी की इस चुनौती को बांध बांधने वालों ने कभी स्वीकार नहीं किया है। अत: प्रश्न है कि किसका व्यवहार शंकास्पद है? गुजरात के विकास लिए जितना धन रखा जाता है उसमें से कितना उन लोगों के पास तक पहुंचता है जो उसके सही हकदार हैं और कितना शासन करने वाले निहित स्वार्थों के पास पहुंच जाता है? यदि नागरिक स्वतंत्रता की राष्ट्रीय परिषद मानव अधिकारों, आर्थिक अनियमितताओं और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के लिए सचमुच परेशान है तो उसे ये प्रश्न पूछने चाहिए। इसके लिए आखिर नर्मदा बचाओ आंदोलन को बदनाम करने के लिए राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में बड़े-बड़े विज्ञापन छपवाने में उसने कितना धन बर्बाद किया है? और यह धन उसे कहां से मिलता है?

प्रतिबंध की इस मांग की सबसे बड़ी विडंबना है कि इसका समर्थन एक के बाद एक गुजरात के सभी पूर्व मुख्यमंत्रियों ने किया है। ये ही मुख्यमंत्री हैं जो दशकों से गुजरात के अकालग्रस्त क्षेत्रों को राहत पहुंचाने में असफल रहे हैं। ये उन राष्ट्र विरोधी सांप्रदायिक ताकतों को कुचलने में असफल या अनिच्छुक रहे हैं जो अल्पसंख्यकों को आतंकित करती हैं और उन अविश्वसनीय और विनाशकारी औद्योगिक शक्तियों को नियंत्रित करने में असफल रही हैं, जिन्होंने गुजरात के स्वच्छ जल और वायु को अत्यंत महंगी वस्तुएं बना दिया है। कच्छ और सौराष्ट्र दोनों को पीने और सिंचाई का पानी विकेंद्रित प्रणाली से एक दशक में ही उपलब्ध कराया जा सकता है। इस बात को नई-नई पंचायतों और अशासकीय संस्थाओं ने सफल प्रयोगों के द्वारा स्थापित करके दिखा दिया है कि कृषि, उद्योग और बिजली का वैकल्पिक, विकेंद्रित और शांतिपूर्ण विकास संभव है। अनेक संवेदनशील सरकारी अधिकारियों ने भी दिखाया है कि यह संभव है। कच्छ और सौराष्ट्र को पीड़ामुक्त करने के लिए सरदार सरोवर परियोजना जैसी भारी-भरकम क्षणजीवी योजना की जरूरत नहीं है। उसके लिए नई और भागीदारीवाली विकास की प्रक्रिया चाहिए। यदि जनता विकेंद्रित योजनाओं के कार्यान्वयन से जुड़ जाती है तो यह काम सस्ते में भी हो सकता है। ग्रामीणों और तरुण भारत संघ नामक अशासकीय संस्था द्वारा राजस्थान के ६०० ग्रामों में लाई गई क्रांति को देखिए। यह काम उन्होंने जोहड़ों का जाल-सा फैलाकर कर दिखाया है। नर्मदा बचाओ आंदोलन इसी प्रकार के विकास की वकालत कर रहा है।

नागरिक स्वतंत्रता की राष्ट्रीय परिषद की प्रतिबंध की इस मांग को देश भर की जनता के नागरिक आंदोलनों पर बढ़ते आक्रमणों के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। यह शायद संयोग भर नहीं है कि ये सन् १९६० में तब से स्पष्टत: बढ़े हैं जब से भारत सरकार ने भू-मंडलीकरण के रास्ते पर कदम रखे हैं। ऐसे रास्ते पर चलने के लिए उद्योगों की भू-मंडलीय शक्तियों और पूंजी को प्राकृतिक संसाधन और सस्ता श्रम चाहिए। इसकी कीमत उन लोगों को चुकानी पड़ती है जो ऐसे संसाधनों पर सबसे अधिक निर्भर हैं और जो जमीन के सबसे निकट हैं। सरकार द्वारा समर्थित बहुराष्ट्रीय खनन के हितों के विरुद्ध अपनी जमीन और जंगल की रक्षा करते हुए काशीपुर (ओडीशा) के आदिवासियों पर गोली चालन, उमरगांव (गुजरात) में एक बंदरगाह के विरुद्ध स्थानीय लोगों का नेतृत्व करने वाले कर्नल प्रतापराव सावे की हत्या, झारखंड के प्रस्तावित कोइलकारो बांध से होने वाले विस्थापन का विरोध करने वाले कई कार्यकर्ताओं को गोली से उड़ा देना, सभी कथित जनविरोधी और जनता के समूहों को प्रतिबंधित करने के लिए मध्यप्रदेश का ताजा 'स्पेशल एरिया सिक्यूरिटी एक्ट' और ऐसी ही बहुत-सी बातें भू-मंडलीकरण और बाजारीकरण के कारण अपनी जीविका से वंचित लाखों लोगों के विरुद्ध औद्योगिक और शहरी वर्गों के पक्ष में काम करने की प्रवृत्ति को दिखाते हैं।

अंत में आशा की यही एक किरण है कि नागरिक सुरक्षा की राष्ट्रीय परिषद कुछ हताश दिखाई देती है। प्रतिबंध की मांग इसी अनुभूति का परिणाम है कि नर्मदा बचाओ आंदोलन के पीछे सचमुच जनता की ताकत है। यदि ऐसा नहीं होता तो कोई ऐसे संगठन को प्रतिबंधित करने की मांग की परेशानी क्यों मोल लेता? यदि ऐसा नहीं होता तो राज्य सरकारें, केंद्र सरकार और सुप्रीम कोर्ट उनकी ओर से अपने कान क्यों बंद करते? और अपनी बात मनवाने के लिए सरकार गोली का सहारा क्यों लेती?